डॉ० योगेश प्रवीन

पीली कोठी

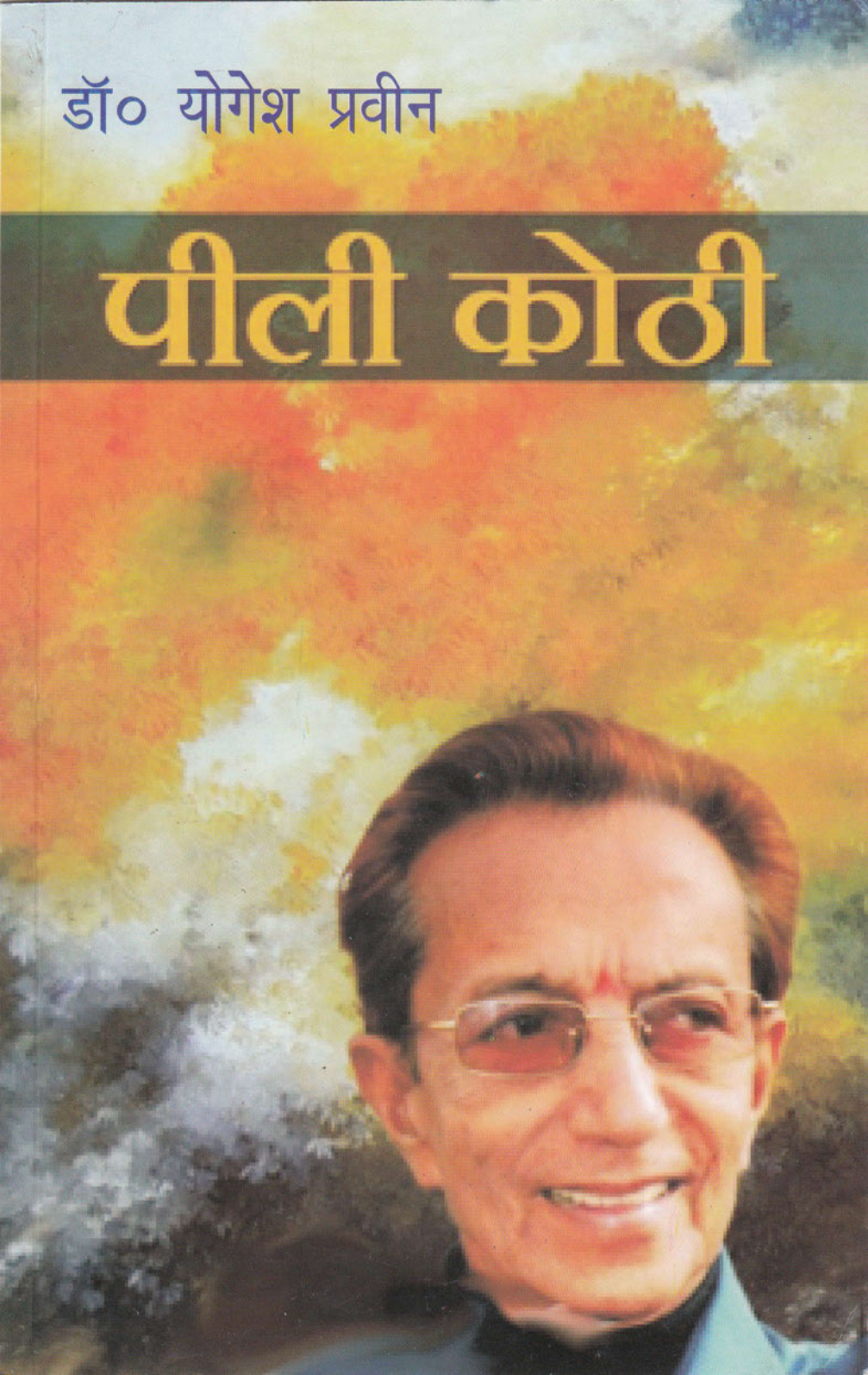

समर्पण

अपने मन शबनम
'रोली-अंशुमन'
को जिनकी रंगभरी झलाझल पालकी इसी
गली-पंचवटी, लखनऊ में उतरी
और जिनकी आरज़ू का खुशरंग ईनाम है ये
रंगदार
'पीली कोठी'

"पीली कोठी" के सन्दर्भ में

"पीली कोठी" कहने को 'उपन्यासिका' है- अर्थात् आकार में एक लघु उपन्यास, किन्तु अपने प्रभाव में यह विशाल है! सचमुच, इसका विषय बड़ा अनूठा है और कुछ अर्थों में असीमित भी। जहाँ तक इस कृति में वर्णित 'लखनवी कल्चर' का प्रश्न है- इसमें हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों का सुरूचिपूर्ण मिलन एवं सम्यक योगदान है जिसकी एक मोहक झलक 'पीली कोठी' में सहज ही देखी जा सकती है।

'योगेश प्रवीन' जी की सुविख्यात कृति "डूबता अवध" की एक कहानी "खुशनुमा साए" में वर्णित घर में एक दीवार का ज़िक्र मिलता है जो एक ओर से पूर्व दिशा में स्थित होने के कारण ठाकुर जी का ठिकाना बनी हुई है जिस पर आरती का दीपक जलता है, तो उधर हाजी साहब की तरफ से किब्ले का रुख होने के कारण, कुरान शरीफ़ का पवित्र स्थल है, जहां लोबान सुलगता है। वस्तुतः दो सम्प्रदायों एवं दो संस्कृतियों का यह अपूर्व मिलन ही एक सच है जो निखर कर उपन्यासिका के रूप में सबके सामने आया है।

योगेश जी की सहज प्रवाहमान, रोचक भाषा, निरंतर अपने सम्मोहन में बांधती हुई इस उपन्यास को अत्यंत पठनीय बनाती है इस कृति के सभी पात्र बड़े स्वाभाविक एवं जीवन्त हैं एवं प्रायः लगता है कि इस उपन्यास में जो वर्णित है वह आँखों के सामने घटित हो रहा है।

"खुशहाली की निशानियां तो शोख रंगों के करीब ही होती हैं, हलके रंग तो उड़े हुए चेहरों की तरह लगते हैं।" सुल्ताना का यह कथन हमें उसके अन्तर्मन की परतों तक ले जाता है। स्थान-स्थान पर विभिन्न पात्रों ने मनः स्थिति एवं परिस्थिति

के अनुकूल अपनी बातें कहीं हैं और उनके कथन प्रायः पात्र विशेष के चरित्र को जहां प्रभावपूर्ण रीति से रेखांकित करते हैं वहीं उनके अन्तर्मन को समझने में भी सहायक होते हैं। जैसे जुबैदा का कहना "यह मेहरबानियां वो सितारे हैं, जिन्हें मैं अपने दामन में नहीं समेट सकती।" स्वतः कई अर्थ-संदर्भो से जुड़ जाता है।

'जितने लोग, उतनी जबानें,' यह योगेश प्रवीन जी की अपनी अन्यतम विशिष्टता है जो उनके प्रसिद्ध नाटकों- "बादशाह बेगम" और "हजरत महल" में भी देखी जा सकती है। 'पीली कोठी' के कई प्रसंग नाटकीयता से भरपूर हैं। "सुल्ताना" की सोच और शख़्सियत दोनों ही पाठकों का भरपूर मनोरंजन करने में सक्षम हैं। उधर जुबैदा और शमीम की छुपी-छुपी मोहब्बत अपने आप प्यार भरी हमदर्दी हासिल कर लेती है। मृत्युन्जय के परिवार में शमीम और जुबैदा का संरक्षण हमारे समक्ष लखनऊ के आपसी सौहार्द्र का अपूर्व दृष्टान्त, प्रस्तुत करता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उपन्यास का फलक, कथा क्रम का प्रवाह एवं भाषा का लालित्य अपने जादुई प्रभाव में निरंतर बांधे रखता है।

कुल मिलाकर यह उपन्यासिका एक अत्यंत मोहक एवं पठनीय कृति बनकर श्री योगेश प्रवीन की मुग्धा भरी लेखनी से निसृत हुई है। आशा है कि साहित्य-संसार में इस कथाकृति का सम्यक स्वागत एवं समादर होगा तथा भविष्य में भी योगेश प्रवीन जी ऐसी ही सार्थक कृतियों से साहित्य की श्री-सम्पदा में वृद्धि करते रहेंगे।

अपरिमित शुभकामनाओं सहित

❑ डॉ० शम्भुनाथ
1/60 विशाल खण्ड,
गोमती नगर लखनऊ

शुभाशंसा

डॉ० योगेश प्रवीन द्वारा प्रणीत लघु उपन्यास 'पीली कोठी' पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह सर्जना है हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला और अवधी के ज्ञाता, इतिहासविद्, लखनऊ के इतिहास व संस्कृति के अनुसंधित्सु एवं हस्तशिल्प के विशेषज्ञ, साहित्य की विभिन्न विधाओं के सिद्धहस्त रचनाधर्मी, गीत रचयिता, डॉ० योगेश प्रवीन की सुदीर्घ एवं बहुआयामी सृजन-यात्रा का महत्वपूर्ण सोपान। 'पीली कोठी' में कलम के धनी योगेश प्रवीन जी ने तहज़ीब नज़ाकत, नफ़ासत, हुनर, वैभव एवं गंगा-जमुनी संस्कृति को अपने दामन में समेटे नवाबी शहर लखनऊ की पृष्ठभूमि पर आधारित दो भिन्न सम्प्रदायों के परिवारों से संबंधित कथावस्तु को अत्यंत कलात्मकता के साथ चित्रित किया है। उपन्यास का आरम्भ रोचक एवं चित्रात्मक भाषा में होता है "यह आसमान का वह टुकड़ा है जो ज़मीन का ज़ेवर बनाकर भेजा गया। वो शहर है जिसमें परियां अपने परों से झाड़ू देने की ख़्वाहिश करती होंगी. ..। यहां के तमाम महल, बगीचे जिनका ज़िक्र तमाम मुहब्बत भरी दास्तानों में शामिल है या यूँ कहिये कि जिनके गोशे-गोशे में रंगीन तिलिस्म छुपे पड़े हैं।"

लघु उपन्यास में लखनऊ के दिलो-जिगर रकाबगंज में स्थित दो हवेलीनुमा कोठियों में रहने वाले दो भिन्न संप्रदायों के परिवारों की कहानी है जिसके पात्र अल्प-वयस्क, युवा, वयस्क, वयोवृद्ध, स्त्री पुरुष सभी हैं और उनसे संबंधित घटनाएं बड़ी खूबसूरती से पिरोई गईं हैं। उपन्यास की प्रमुख विशेषता है संवादो की सहज किन्तु सशक्त अभिव्यक्ति। संवादों के माध्यम से न केवल लखनऊ की सांस्कृतिक विरासत, विभिन्न वर्गों, संप्रदायों की दैनिक दिनचर्या, आचार-व्यवहार, रस्मो-रिवाज, धर्म-कर्म, खानपान, रहन-सहन, पहनावे, गीत-संगीत एवं पारस्परिक रिश्तों व सौहार्द्र

आदि संबंधी विशेषताओं का प्रभावशाली निरूपण किया गया है, वहीं पात्रों के मनोभावों, संवेदनाओं, सहृदयता, सम्मान, स्त्री-शिक्षा, मान-मर्यादा, जीवन-मूल्यों, समवयस्कों के पारस्परिक आकर्षण एवं प्रेम की पवित्र भावना की ज्योति भी प्रखर हुई है। कथानक का अंत प्रसन्नता मिश्रित सुकून देता है। प्रमुख पात्र सुलताना, मीरा, जुबैदा और शमीम को अपनी-अपनी मंज़िल मिल जाती है।

प्रवीन जी ने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा पात्रों की सहज-असहज प्रतिक्रियाओं, मानवीय-अमानवीय व्यवहारों, अंतर्संघर्षों का यथार्थ एवं सूक्ष्म चित्रण किया है। आरंभ से अंत तक प्रवाह एवं कथा का सतत आनंद बना रहता है। यत्र-तत्र हास्य के पुट से युक्त संवाद प्रभावोत्पादकता की अभिवृद्धि में सक्षम है। यथा-अंग्रेज़ दम्पति द्वारा 'मैंगो एनी मैंगो मरचेन्ट' की दरयाफ़्त पर गली के लड़कों ने अपनी समझ के मुताबिक उनको गली के आखिरी सिरे पर 'मंगो महरी' के दरवाजे पर ले जाकर खड़ा कर दिया।

एक अन्य उद्धरण उल्लेखनीय है "लड़ने में ये दोनों एक दूसरे से आगे हैं। भाई तो कहते हैं कि झाँसी की रानी और हज़रत महल अब की एक ही जगह साथ-साथ हैं। फ़र्क ये है कि वो आज़ादी के अहम हक़ के लिये फ़रंगियों से लड़ी थीं और ये दोनों आपस में ही कटी-मरी जा रही हैं। लेकिन मज़ा तो ये है कि इन्हें शहीद नहीं होना है क्योंकि ये बिना तीर तलवार के सिर्फ़ जुबान से लड़ रही हैं।"

उपन्यास की भाषा-शैली लखनऊ की गंगा-जमुनी रंग का आईना है। सहज, बोधगम्य, प्रवाहपूर्ण भाषा में उर्दू के शब्द नगीने की तरह बड़ी खूबसूरती से जड़े गए हैं यथा काशाना, क़याम, अख़्तियारात, मुख़्तलिफ, शोशा, ख़ाज़िमी, शगूफ़ा, सरगोशियाँ, शग़ल, निगहबान, ख़्वाहिशमन्द, शाहानी, इब्तदा, हमनवां, ख़ालिस, जज़्बात, मुन्हर्सिर, ख़िदमत, पुख़्तगी आदि। सामाजिक, शब्दों एवं विशिष्ट अभिव्यक्तियों की छटा भी विलक्षण है यथा-काबिले-दीद, दिलोजान, तर्ज़-तरन्नुम रूहानी-मिज़ाज़, शर्मोहया, उम्रे-नौबहार, नफ़ासत के आलम, दिल के छाले, बुरी बलाओं के शोले, बीते ज़माने के फ़साने, नज़ाकत के लहजे, आंसुओं का कारख़ाना, गले की कलाबाज़ियाँ, गीतों से कुश्ती, हुस्नो इश्क के ख़ज़ाने आदि।

संदर्भ एवं पात्रों के अनुसार भाषा-प्रयोग के पारखी योगेश जी द्वारा प्रयुक्त बहड़ोड़, कनकव्वे, बिसाती, पीनस, बांकड़ी, लचका, चच्ची, छुई-छुऔव्वल, आदि शब्द रोज़मर्रा की भाषा के वैशिष्ट्य से पहचान कराते हैं। कहावतों, मुहावरों, शेरो-शायरी के अत्यंत सुष्ठु प्रयोग से भाषा की रोचकता और जीवंतता में अभिवृद्धि

हुई है। वाक्य संयोजन सर्वत्र अत्यंत सुव्यवस्थित होने के साथ ही उसमें यत्र-तत्र चुटीलापन भी दृष्टिगत होता है। यथा- "रिश्तों को भी वक़्त-वक़्त पर दाना-पानी देना ही पड़ता है।" "लाल रूमालों के बीच मुहब्बत का सेफ़्टीपिन।" "बेहया ऐसी कि शर्म के खेत के खेत चर डाले।" एवं "देखिए आप लड़ने ही आईं थी तो ढाल तलवार कहां छोड़ आयीं।"

अस्तु कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, घटनाओं के अतिरिक्त शब्द-चयन, वाक्य-संयोजन एवं संवादों की विलक्षण प्रस्तुति एवं अभिव्यंजना-शिल्प की दृष्टि से 'पीली कोठी' लखनऊ की गंगा-जमुनी संस्कृति, रिश्तों की अहमियत, भाई चारे, बंधुत्व की भावना, पड़ोसी-धर्म, मान-मर्यादा, सकारात्मक-सोच एवं स्वस्थ, मैत्रीपूर्ण समाज के निर्माण की दिशा-निर्देशन करती है। मुझे विश्वास है लखनऊ की आत्मा से पूर्ण परिचय कराता इस लघु-उपन्यास का निसंदेह पाठकों, भाषा-विशेषज्ञों एवं जिज्ञासुओं के मध्य सम्यक् स्वागत, समादर एवं अभिनंदन होगा।

उत्कृष्ट रचनाधर्मिता, सुदीर्घ साहित्य-साधना, जीवन-जगत के अनुभव के धनी, अत्यंत संवेदनशील, चित्र-भाषा के संयोजक डॉ. योगेश प्रवीन की सशक्त प्रवाहमान लेखनी निरंतर सर्जना के नए आयाम उद्घटित करती रहे और पाठक उनसे लाभान्वित होते रहें इसी मंगलकामना एवं शुभेच्छा के साथ-

अक्षय तृतीया 2011

❑ डॉ० उषा सिन्हा
पूर्व-आचार्य एवं अध्यक्ष
भाषाविज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रसंगवश

लखनऊ की कहानी में "पीली कोठी" की बात एक दिलचस्प मकाम रखती है। नवाबी युग की पहली पीली कोठी कहीं ठाकुरगंज के करीब हुसैनाबाद के पीछे, हाता सितारा बेगम के पास थी, जिसका जिक्र ऐतिहासिक विवरण में मिलता है, लेकिन उसका अब नामोनिशां नहीं है।

जाने आलम के सपनों का स्वर्ग कैसरबाग, यूं तो सारा का सारा रामरज से रंगा हुआ मिलता है लेकिन वहां भी हुजूरबाग के साथ एक खास "पीली कोठी" थी जिसे वो "जर्द कोठी" कहना पसन्द करते थे। कैसरबाग के शाही स्टेज, बइयत उल इन्शां (कलम का निवास) और लाखी दरवाजे पर जब पीतल के सुनहरे कलस, कंगूरे, छतरियाँ और मोरछल लगे हुये थे तो ये पूरा सुनहरा इलाका लंका के नाम से जाना जाता था और कहना न होगा कि मात्र दस बरस की शान दिखा कर ये लंका लूट के हवाले हो गयी और फिर वहां की उदास जर्द दीवारों के साये में खड़े लोग बस ये ही बैन करते पाये गये...

हज़रत बिन प्यारे
आज लखनपुर सूना
किनने कीन्हीं लड़इयाँ
कवन गढ़ लीन्हा
अरे, कौन बहादुर आय
मुगल सर कीन्हा
आज लखनपुर सूना
कीन्हीं फिरंगी लड़इयाँ

ऊटरम गढ़ लीन्हा
कम्पनी बहादुर आय
अख़्तर पिया छीना
आज लखनपुर सूना

यहां एक विशेष विषय पर ध्यान दिलाना चाहूंगा कि सच्चा इतिहास वो नहीं होता जो तथाकथित ऐतिहासिक किताबों को देख-देख कर लिखा जाता है। वो ऐतिहासिक किताबें, जो हाकिम का मुंह देखकर उसकी मेहरबानी के इशारे पर लिखी जाती हैं। उनसे ज्यादा तो विदेशी पर्यटकों की डायरी हकीकत के करीब होती है। हां, इतिहास की किताबों में लड़ाईयों के जिक्र, रन के घोड़ों और हरम की बीबियों की तादाद ज़रूर कायदे से मिल जाती है।

सच्ची कहानी तो अवाम की ज़बान पर शहद से लिखी मिलती है जो परम्परा के झरोखों से झांकती है। यहां लखनऊ के इस सत्तावनी लोक गीत में लखनऊ के प्राचीन नाम लक्ष्मणपुर या लखनपुर होने की बात स्पष्ट ही नहीं है, वज्र से रेखांकित भी है। सदियों से लखनऊ के पुरोहित 'संकल्प' लेते समय कालगणना में बौद्धावतारे (नवम अवतार भगवान बुद्ध के बाद का युग) तथा स्थान बोध के लिए लक्ष्मणपुर ही पढ़ते हैं।

हां तो जनाब कैसरबाग की पीलीकोठी की बात तो हो गयी जब ब्रिटिश दौर की पीलीकोठी पर आइये। रकाबगंज में काशीडेरा के आगे लाइन किनारे मौलवी अनवार बाग़ (हसरत मोहानी की आरामगाह) के सामने एक पीलीकोठी मशहूर है जिस पर क़तार से बन्दर बिठाये गये हैं वो भी तब, जब कि बन्दरों की यहां कोई कमी नहीं रही। दूसरी पीलीकोठी इसी क्षेत्र में गौस नगर की पीलीकोठी है जो मेरे ननिहाल का नामी मकान है।

अब यहां यह बात भी मैं स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि उस पीलीकोठी से भी इस उपन्यासिका "पीलीकोठी" का कुछ लेना देना नहीं है। सिवा इसके कि उस सन् 1912 के पत्थर, वाली पीलीकोठी और मेरे घर 'पंचवटी' के बीच एक छत्ता (गली पर पुल) बना हुआ है जो दोनों तरफ के मकानों को आपस में जोड़ता है। यह पुल ही मेरी रचना की प्रेरणा है। शहंशाह अकबर कालीन बसावट वाले इस मुहल्ले में हिन्दू मुस्लिम आपस में खिचड़ी बनकर रहते आये हैं और इस तरह से इन दोनों के मन मध्य एक अदृश्य गंगा जमुनी सेतु कायम रहा है। आपसी मेल मिलाप और रोजमर्रा की जिन्दगी में दोनो की हिस्सेदारी रही है। यहां की आसान ज़बान और लखनवी